जनसत्ता

पाबंदी की हद

हालांकि पिछले साल अगस्त में जब धारा 144 लागू करने के साथ-साथ कश्मीर में इंटरनेट पर पूरी तरह रोक लगा दी गई थी, तभी से अलग-अलग क्षेत्रों के लोगों और राजनीतिक दलों ने सरकार के इस फैसले की सख्त आलोचना की थी। इसे अभिव्यक्ति की आजादी बाधित किए जाने के तौर पर देखा गया था और सरकार से इस फैसले को वापस लेने की मांग की गई थी। इसके बावजूद उस समय से लेकर अब तक सरकार ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया था और अशांति फैलने की आशंका का हवाला देकर कश्मीर में धारा 144 के साथ-साथ इंटरनेट पर पाबंदी को कायम रखा गया था। लेकिन अब सुप्रीम कोर्ट ने शुक्रवार को इस मसले पर जो टिप्पणियां की हैं, वे सरकार के फैसले को एक तरह से कठघरे में खड़ा करती हैं। अदालत ने साफ लहजे में कहा कि लंबे वक्त तक इंटरनेट पर पाबंदी नहीं लगाई जा सकती और ऐसा सिर्फ उसी स्थिति में हो सकता है जब कोई विकल्प नहीं बचे। इसके अलावा, समय-समय पर इसकी समीक्षा होनी चाहिए। अदालत ने जम्मू-कश्मीर सरकार को एक हफ्ते के भीतर इन पाबंदियों की समीक्षा करने को कहा है।

इस संदर्भ में सुप्रीम कोर्ट की यह टिप्पणी तस्वीर को और साफ करती है कि इंटरनेट आज लोगों की अभिव्यक्ति का अधिकार है और यह संविधान के अनुच्छेद 19 के तहत मौलिक अधिकारों के तहत आता है। साथ ही अदालत ने पाबंदी से संबंधित सभी फैसलों को सार्वजनिक करने को कहा है। निश्चित रूप से यह सरकार के लिए असहज करने वाली और असुविधा की स्थिति है। यही नहीं, कोर्ट ने कश्मीर में धारा 144 लागू करने पर साफ शब्दों में कहा कि देश में कहीं भी लगातार इस कानून को लागू रखना सरकार द्वारा शक्ति का दुरुपयोग है। यानी सुप्रीम कोर्ट ने कश्मीर में अनुच्छेद 370 पर लिए गए फैसले के बाद वहां सामान्य स्थिति बहाल करने के नाम पर सरकार की ओर से उठाए गए कदमों पर सख्त रुख अख्तियार किया है तो इसके पीछे कुछ ठोस आधार हैं। सवाल है कि एक संघीय और लोकतांत्रिक ढांचे के तहत चलने वाले देश की सरकार को इन सबका खयाल रखना जरूरी क्यों नहीं लगा! क्या करीब पांच महीने पहले इंटरनेट पर पूरी तरह पाबंदी और धारा 144 लागू करने से सरकार का वह मकसद पूरा हो गया जो उसने सोचा था? आखिर अदालत को यह फैसला क्यों सुनाना पड़ा कि इस धारा का इस्तेमाल किसी के मत को दबाने के उपकरण के रूप में नहीं किया जा सकता है?

जिस दौर में किसी भी विचार की अभिव्यक्ति और उसे एक-दूसरे के साथ साझा करने से लेकर बैंक, अस्पताल, शैक्षणिक संस्थान, पर्यटन, कहीं भी आवाजाही या बाजार की ज्यादातर गतिविधियां इंटरनेट पर निर्भर हो चुकी हैं, उसमें इतने लंबे वक्त तक इस माध्यम पर पाबंदी से कितना और किस तरह का नुकसान हुआ होगा, इसका सिर्फ अंदाजा लगाया जा सकता है। यहां तक कि खुद सरकारी महकमों के लगभग सभी कामकाज और कानून-व्यवस्था को लागू करने में इंटरनेट के इस्तेमाल का महत्त्व और इस पर निर्भरता किसी से छिपी नहीं है। फिर भी, इतने लंबे वक्त से इस पर पूरी तरह रोक पर पुनर्विचार करने की जरूरत नहीं समझी गई। आखिर अदालत को यह जरूरत महसूस हुई कि अस्पतालों, शैक्षणिक संस्थानों जैसी तमाम आवश्यक सेवाएं प्रदान करने वाली सभी संस्थाओं में इंटरनेट सेवाओं को बहाल किया जाए तो इसकी कोई वजह होगी। यों भी लोगों की आम जिंदगी में इंटरनेट की जो जगह बन चुकी है और यह विचार साझा करने का एक उपयोगी साधन बन चुका है, उसमें अचानक ही देश की एक बड़ी आबादी को इससे वंचित कर दिया जाना लोकतंत्र के विरुद्ध है।

न्याय की उम्मीद

बलात्कार की घटनाओं से जुड़े मुकदमों की तत्काल सुनवाई के लिए देश के चौबीस राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में त्वरित अदालतें गठित करने के फैसले से यह उम्मीद बंधी है कि महिलाओं और बच्चों के साथ ऐसे जघन्य और घिनौने अपराध करने वालों को जल्द सजा मिल सकेगी। देशभर में बलात्कार की घटनाएं जिस तेजी से बढ़ रही हैं, उससे यह साफ है कि ऐसा करने वालों में कानून का कोई भय नहीं रह गया है। इसकी सबसे बड़ी वजह यही है कि बलात्कार से संबंधित मामले वर्षों तक अदालतों में चलते रहते हैं और ऐसे में कई बार पीड़ित महिला का टूट जाना स्वाभाविक होता है। इससे अपराधियों के हौसले बुलंद होते जाते हैं। देश में इस वक्त बलात्कार और पोक्सो के करीब पौने दो लाख मामले लंबित पड़े हैं। इसकी वजह यही है कि अदालतों में काम का बोझ है, जजों की कमी है, इसलिए निचली अदालतों से लेकर हाईकोर्टों और सुप्रीम कोर्ट तक मुकदमों का अंबार लगा है। ऐसे में खासतौर से बलात्कार से संबंधित मामलों की सुनवाई में लंबा समय लगना स्वाभाविक है। देश के तीन सौ नवासी जिले ऐसे हैं जहां की अदालतों में पॉक्सो के तहत लंबित मामलों की संख्या सौ से ज्यादा है।

महिलाओं और बच्चों के खिलाफ ऐसे अपराधों पर लगाम लगाने के लिए लंबे समय से कवायद तो चलती रही है, लेकिन अभी तक भी ऐसे मामलों में त्वरित न्याय संभव हो नहीं पाया है। इसका बड़ा कारण यह है कि त्वरित अदालतें बनाने का फैसला राज्य सरकारों को करना होता है। लेकिन राज्य अपने संसाधनों का रोना रोकर इससे बचे रहते हैं। त्वरित अदालतें बनाने की दिशा में काम विधि और न्याय मंत्रालय ने शुरू किया था। लेकिन अभी भी देश के कुछ राज्य और केंद्र शासित प्रदेश मंत्रालय की इस योजना में शामिल नहीं हुए हैं। ऐसे में यह सवाल उठता है कि केंद्र की पहल के बावजूद राज्य त्वरित अदालतें गठित करने की दिशा में तेजी दिखाएंगे। अभी यह माना जा रहा है कि अगर तय योजना के मुताबिक त्वरित अदालतों का गठन हो जाता है और ये समय से काम शुरू कर भी देती हैं तो हर अदालत हर साल एक सौ पैंसठ मामलों का निपटारा करेगी।

त्वरित अदालतों के गठन को लेकर सरकार ने सक्रियता सुप्रीम कोर्ट के निर्देश के बाद दिखाई है। इसी तरह बच्चों से जुड़े अपराधों, खासतौर से यौन अपराधों के तत्काल निपटारे के लिए शीर्ष अदालत ने पिछले साल देश के हर जिले में पॉक्सो अदालत बनाने का निर्देश दिया था। लेकिन मामला सिर्फ त्वरित अदालतों के गठन तक सीमित नहीं रहना चाहिए। मुकदमों की सुनवाई भी निर्बाध रूप से होनी जरूरी है। बलात्कार जैसे मामलों के मुकदमे में सबसे बड़ी समस्या यही आती है कि ऐसे ज्यादातर मामलों में पुलिस की भूमिका संदिग्ध बनी रहती है, पुलिस जांच में लापरवाही बरतती है, कई बार सबूतों से छेड़छाड़ करने और मामले को कमजोर बनाने जैसे उदाहरण भी देखने को मिलते हैं। ये सब पीड़ित को न्याय दिलाने में बाधा साबित होते हैं। इसलिए भारत में बलात्कार के मामलों में दोषसिद्धि बत्तीस फीसद ही है। निर्भया कांड के बाद जिस तरह से अदालतों ने सक्रियता दिखाई थी, केंद्र और राज्य सरकारों की नींद टूटी, सख्त कानून भी बने, उनसे लगा था कि अब ऐसे मामलों में त्वरित न्याय मिलना संभव हो सकेगा। लेकिन अभी तक इन अदालतों का गठन नहीं हो पाना बता रहा है कि हम कैसे पीड़ितों को न्याय मुहैया कराएंगे!

कल्पमेधा

महत्त्वाकांक्षी के लिए ख्याति खारे जल के समान है, जिसे जितना पीता है, उतनी ही प्यास बढ़ती जाती है।

-इमर्सन

फसल बीमा योजना पर उठते सवाल

अभिजीत मोहन

हैरान करने वाला तथ्य यह है कि केंद्र सरकार द्वारा फसल बीमा योजना प्रारंभ किए 2020 फरवरी में चार वर्ष हो जाएंगे, लेकिन उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान और पश्चिम बंगाल सरकार द्वारा अभी तक 2017-18 के प्रीमियम का हिस्सा नहीं दिया गया है। दूसरी ओर बिहार और पंजाब जैसे राज्यों ने तो प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना को लागू ही नहीं किया।

केंद्र सरकार द्वारा 2016 में प्रारंभ की गई प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना से किसानों का मोहभंग होना शुरू हो गया है। आंकड़े बता रहे हैं कि गत तीन वर्षों के दौरान इस योजना के तहत किसानों की संख्या और कृषि योग्य भूमि के क्षेत्र में कमी आई है। दूसरी ओर, सरकारी और निजी बीमा कंपनियों का मुनाफा बढ़ा है। गौर करें तो इस योजना से किसानों का मोहभंग ऐसे ही नहीं हुआ है। जब किसानों को बीमे वाली फसल का समय पर मुआवजा नहीं मिलेगा और सरकारी तंत्र द्वारा तबाह फसल का सटीक आकलन भी नहीं होगा, तो भला किसान अनावश्यक रुप से फसल बीमा योजना का बोझ क्यों उठाएंगे?

सरकार के ही आंकड़ों पर गौर करें तो 2016-17 में चार करोड़ चार लाख किसानों ने तकरीबन तीन सौ बयासी लाख हेक्टेयर कृषि भूमि का फसल बीमा योजना के तहत बीमा कराया था। फसलों के नुकसान का आकलन कर बीमा कंपनियों ने किसानों को सिर्फ दस हजार पांच सौ पच्चीस करोड़ रुपए मुआवजे के तौर पर दिए। जबकि केंद्र और राज्य सरकारों ने इन बीमा कंपनियों को एक लाख इकतीस हजार अठारह करोड़ रुपए प्रीमियम के तौर पर दिया। ऐसे में समझना मुश्किल नहीं है कि फायदे से किसकी झोली भरी। अब जरा 2017-18 के आंकड़ों पर नजर दौड़ाएं। एक वर्ष में ही फसल बीमा कराने वाले किसानों की संख्या चार करोड़ चार लाख से घट कर तीन करोड़ उनचास लाख रह गई और कृषि क्षेत्रफल भी तीन सौ बयासी लाख हेक्टेयर से घट कर तीन सौ तियालीस लाख हेक्टेयर रह गया। 2017-18 में केंद्र व राज्य सरकारों ने बीमा कंपनियों को प्रीमियम के तौर पर एक लाख उनतीस हजार दो सौ पनचानवे करोड़ रुपए दिए, जबकि किसानों को मुआवजे के तौर पर सिर्फ सत्रह हजार सात सौ सात करोड़ रुपए मिले। यानी इस बार भी मुनाफे में बीमा कंपनियां ही रहीं। हैरान करने वाला तथ्य यह है कि केंद्र सरकार द्वारा फसल बीमा योजना प्रारंभ किए 2020 फरवरी में चार वर्ष हो जाएंगे, लेकिन उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान और पश्चिम बंगाल सरकार द्वारा अभी तक 2017-18 के प्रीमियम का हिस्सा नहीं दिया गया है। दूसरी ओर बिहार और पंजाब जैसे राज्यों ने तो प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना को लागू ही नहीं किया।

बहरहाल, इन आंकड़ों से एक बात स्पष्ट है कि प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना का वास्तविक लाभ किसानों को नहीं मिल रहा है और अब वे किस्त के अनावश्यक बोझ से बचना चाहते हैं। वैसे भी गौर करें तो देश में अस्सी फीसद से अधिक किसान लघु एवं मध्यम श्रेणी के हैं। इनमें सिर्फ तीस-चालीस फीसद किसान व्यावसायिक खेती करते हैं। अधिकांश किसान अपनी पारिवारिक जरूरतों को पूरा करने के लिए खेती करते हैं। ऐसे में बीमे का प्रीमियम देना उन्हें अखरता है। इसलिए और भी कि उनकी फसल के नुकसान का आकलन सही तरीके से नहीं होता है और मुआवजा भी समय पर नहीं मिलता है। योजना के जरिए संदेश दिया गया कि प्राकृतिक आपदा के तुरंत बाद ही पच्चीस फीसद दावा सीधे किसानों के खाते में पहुंच जाएगा। अगर किसानों की फसल ओलावृष्टि, बेमौसम बारिश या आंधी-तूफान से नष्ट होती है, तब भी उन्हें मुआवजा मिलेगा। इस उद्देश्य को साधने के लिए फसल बीमा को तेईस से बढ़ा कर पचास फीसद तक का लक्ष्य निर्धारित किया गया। इस योजना में बंटाई पर खेती करने वालों का भी ध्यान रखा गया।

लेकिन आंकड़े बताते हैं कि फसल बीमा योजना का लाभ किसानों से ज्यादा बीमा कंपनियों को मिला। यह माना जा रहा था कि इस योजना के मूर्त रूप लेने के बाद पूर्वी उत्तर प्रदेश, बुंदेलखंड, विदर्भ, मराठवाड़ा और तटीय ओड़ीशा के उन किसानों का अच्छा-खासा भला होगा, जो वर्षों से न सिर्फ सूखे की मार झेल रहे हैं, बल्कि कर्ज के बोझ से भी दबे हुए हैं। लेकिन उन्हें राहत नहीं मिली। आज भी देश का हर दूसरा किसान कर्ज में डूबा है। देश के नौ करोड़ किसान परिवारों में से बावन फीसद कर्ज के बोझ तले हैं और हर किसान पर औसतन सैंतालीस हजार रुपए से अधिक का कर्ज है। 'भारत में कृषक परिवारों की स्थिति के मुख्य संकेतक' शीर्षक वाली रिपोर्ट की मानें तो आंध्रप्रदेश के तिरानवे फीसद किसान परिवार कर्ज में डूबे हैं। इसी तरह उत्तर प्रदेश में चवालीस फीसद, बिहार में बयालीस फीसद, झारखंड में अट्ठाईस फीसद, हरियाणा में बयालीस फीसद, पंजाब में तिरपन फीसद

और पश्चिम बंगाल में साढ़े इक्यावन फीसद किसान परिवार कर्ज में डूबे हैं। यह स्थिति कृषि प्रधान देश भारत के लिए किसी त्रासदी से कम नहीं है।

कृषि मंत्रालय और राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के मुताबिक कर्ज के जाल में फंसे किसान न सिर्फ बदहाली का जीवन जीने को अभिशप्त हैं, बल्कि आत्महत्या कर रहे हैं। सरकार की विफल नीतियों का नतीजा है कि देश में किसानों की संख्या लगातार घट रही है। एक आंकड़े के मुताबिक 2001 में देश में बारह करोड़ तिहत्तर लाख किसान थे, जिनकी संख्या वर्ष 2011 में घट कर ग्यारह करोड़ सत्तासी लाख रह गई है। यानी छियासी लाख किसानों ने किसानी छोड़ दी। देश के सबसे बड़े राज्य उत्तर प्रदेश की बात करें तो पिछले दस वर्षों में इकतीस लाख किसानों ने खेती छोड़ी है। खेती योग्य जमीन का कम होना, खेती में लागत का अधिक होना, रियल स्टेट के लिए अधिग्रहण इसके बड़े कारण हैं। इसके अलावा प्रकृति पर आधारित कृषि, देश के विभिन्न हिस्सों में बाढ़ एवं सूखे का प्रकोप, प्राकृतिक आपदा से फसल की क्षति और कर्ज बोझ के कारण बड़े पैमाने पर किसान खेती छोड़ रहे हैं। पिछले एक दशक के दौरान महाराष्ट्र में सर्वाधिक सात लाख छप्पन हजार, राजस्थान में चार लाख अठहत्तर हजार, असम में तीन लाख तीस हजार और हिमाचल में एक लाख से अधिक किसानों ने खेती का काम छोड़ दिया। इसी तरह उत्तराखंड, मेघालय, मणिपुर और अरुणाचल जैसे छोटे राज्यों में भी किसानों की संख्या घटी है।

गौरतलब है कि एक हजार हेक्टेयर खेती की जमीन कम होने पर सौ किसानों और सात सौ साठ खेतिहर मजदूरों की आजीविका छिनती है। आज देश में प्रति व्यक्ति कृषि भूमि की उपलब्धता 0.18 हेक्टेयर रह गई है। बयासी फीसद किसान लघु एवं सीमांत किसानों की श्रेणी में आ गए हैं और उनके पास कृषि भूमि दो हेक्टेयर या उससे भी कम रह गई है। कृषि क्षेत्र की विकास दर भी लगातार घट रही है। वर्ष 1950-51 में देश के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि की भागीदारी 51.9 थी, जो घट कर 27 फीसद के आसपास रह गई है। यह सही है कि उद्योग-धंधे, कल-कारखाने एवं सेवा क्षेत्र में सतत विकास की वजह से कृषि की भागीदारी कम हुई है, लेकिन पिछले तीन दशक में कृषि पर निर्भर आबादी में इजाफा दर्शाता है कि गैर-कृषि क्षेत्र में रोजगार के अवसरों का आनुपातिक फैलाव नहीं हुआ है। दूसरी ओर खेती के विकास में क्षेत्रवार विषमता का बढ़ना, प्राकृतिक बाधाओं से पार पाने में विफलता, भूजल का खतरनाक स्तर तक पहुंचना और हरित क्रांति वाले इलाकों में पैदावार में कमी आना और भी चिंताजनक है। हैरानी की बात तो यह है कि इस दिशा में सुधार के लिए सरकार की ओर से कोई ठोस पहल आज तक नहीं हुई है। जिन क्षेत्रों में सरकारें खेती की जमीन को अधिग्रहीत कर रही हैं, उनमें विस्थापन की भी विकट समस्या उत्पन्न हो गई है। अपनी जमीन गंवाने के बाद किसानों के पास जीविका का कोई साधन नहीं रह गया है। लिहाजा, वे खानाबदोशों की तरह जीवन गुजारने को विवश हैं। उम्मीद थी कि प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना से किसानों और कृषि की सूरत बदलेगी। लेकिन उसका सारा फायदा तो बीमा कंपनियां ले उड़ीं।

अपना भरोसा

पूनम पांडे

दुनिया मेरे आगे

हमारी एकमात्र वास्तविकता हमारा वर्तमान है। जो पल हमारे सामने है, बस यही हमारे पास है। हमें अपने आप से यह सवाल जरूर पूछना चाहिए कि हम अपने पलों को कैसे बिताते हैं। हम ऐसा क्या कर रहे हैं कि हमारा यह पल सार्थक हो रहा है। हम हरेक पल में सकारात्मक होकर आगे बढ़ रहे हैं। अपने किसी लक्ष्य की तरफ बढ़ रहे हैं या उसको नजरअंदाज कर रहे हैं। हमारे भोगे हुए पल हमको प्रसन्न कर रहे हैं या नहीं। हमें इन सब पर विचार करना चाहिए। एक कहावत है कि सपने में मधुमक्खी का छत्ता बनाने वाले का शहद हमेशा छत्ते सहित गायब हो जाता है। मोम भी बाकी नहीं रहता।

अलबर्ट आइंस्टीन कहते थे कि हमारे पास सीमित ऊर्जा होती है। हमें कई बार अजीबोगरीब लोग मिलते हैं। उनसे संवाद के समय हमें अपनी ऊर्जा का उपयोग समझदारी से करना चाहिए, क्योंकि अगर आप उलझ गए तो वे आपकी ऊर्जा को निचोड़ लेंगे। आपका अमूल्य समय पानी की तरह बह जाएगा। बचा रह जाएगा सिर्फ अफसोस। यह एक ऐसी स्थिति है जहां सतर्कता बहुत सहयोग करती है। स्पेन के मशहूर लेखक मिगेल, जिनका पूरा नाम मिगेल डी सर्वांतेज है, उन्होंने जीवन भर बेहद उठा-पटक झेली और बगैर किसी गलती के पांच साल से ज्यादा उन्हें नजरबंद भी रहना पड़ा खतरनाक समुद्री डकैतों के चंगुल में। मगर उनका जुझारूपन कभी कम नहीं हुआ। साठ साल की उम्र पार करने के बाद उन्होंने 'डान किहोटे' नामक उपन्यास लिखा। इस उपन्यास को पश्चिम का पहला आधुनिक शैली का उपन्यास कहा जाता है। स्पेनिश भाषा को इस उपन्यास ने पहचान दिलाई। हमारी कामयाबी अपनी ताकत यानी आत्मबल को बनाए रखने में है।

दरअसल, कुछ लोग इतने प्रतिभावान होते हैं कि बहुत कुछ कर सकते हैं, मगर वे अपने जीवन मूल्य बनाते ही नहीं। उत्साह को महसूस ही नहीं करते। दिन आराम से कट रहे हैं तो वे अपनी गति, लय, निरंतरता- सब रबर बन कर मिटा देते हैं। हम सुविधाओं में डूबे रहना चाहते हैं, जबकि सच तो यह है कि बहुत सुख, आराम, वैभव भी हमें उदासी से भर देता है। हम सब एक गुण लेकर इस संसार में आए हैं और उसका नाम है खुद को प्रस्तुत करना। कला, साहित्य, विज्ञान, संगीत- किसी भी तरह हम खुद को अभिव्यक्त कर सकते हैं। सोच और विचार हमें कुछ अनूठा करने की सूझ दे सकते हैं। तितलियां कहती हैं कि हमसे मिलने की चाहत है तो जंगल में चले आओ। पर्वत हमसे कदमों के निशां ही तो मांगते हैं। इसलिए हमें अपनी विलासिता पर इतना आश्रित नहीं होना चाहिए कि बाद में हमारा मन अवसादों का स्थायी घर बन जाए। इस तरह हम हौले-हौले कठपुतली बनने लगते हैं। इससे ज्यादा भयानक और कुछ भी नहीं, क्योंकि हमें अपने हौसले की भी खबर नहीं रहती। हमारा अस्तित्व बिखरने लगता है। हम फिर किसी और सहारे के पीछे-पीछे भागने लगते हैं। हम इस संसार में क्या होने आए थे और क्या होकर निकल लेते हैं।

हममें से शायद सभी को यह बात मालूम न हो कि जीवन की इस यात्रा में कितने महान लोग जन्मजात रुकावट के बावजूद आगे बढ़ते रहे। वात्सल्य रस के विश्वविख्यात कवि सूरदास दृष्टिहीन थे। विंस्टन चर्चिल साफ नहीं बोल पाते थे, हकलाते थे। महान दार्शनिक सुकरात दिखने में कुरुप माने जाते थे और उनका पारिवारिक जीवन बहुत ही कलहपूर्ण रहा। महान शायर मिर्जा गालिब के सिर से बचपन में ही माता-पिता का सहारा नहीं रहा। महान वैज्ञानिक हेलन केलर कितनी शारीरिक अक्षमता के बाद भी सर्वोच्च काम करती रहीं। स्टीफन हाकिंग्स इतनी आधी-अधूरी देह के बाद भी संसार के लिए मिसाल बन गए। इन लोगों ने अपनी कमियों का रोना-पीटना करने में समय बर्बाद नहीं किया और जीवन के सुंदर हार में अपने हर पल को मोती की तरह पिरो लिया। हमारा जीवन मंत्र यह होना चाहिए कि हम उन लोगों, उन परिस्थितियों, चीजों को बिल्कुल भूल जाएं, जिनसे हमें किसी तरह का नुकसान, दर्द, परेशानी मिली। इस तरह हम मुश्किल वक्त में भी अपना मानसिक संतुलन न खोएं। इसका सकारात्मक और सुखद परिणाम यह होगा कि हम बेहतरीन बातों का खुल कर स्वागत कर सकेंगे।

एक शोध के अनुसार पूरी दुनिया में सिर्फ बारह प्रतिशत लोग पूरी तरह से जागरूक, सजग हैं और संतुष्ट भी। मतलब साफ है कि संसार में सफलता के तमाम साधनों के बावजूद मानव पूरी तरह पूर्ण नहीं है। वह बहुत सारे काम अनमने ढंग से कर रहा है, मगर कुछ पसोपेश में है। इसीलिए आत्महत्या की घटनाएं बढ़ती जा रही हैं। ऐसे में हम सबका यह दायित्व बन जाता है कि अपना उपयोग दूसरों को भी करने दें। अपनी सहानुभूति, समय, धन, दुआ कुछ भी है, उसे अपने तक ही सीमित न रखें। हौले-हौले चाहे छोटा ही सही, मगर रोशनी की तरफ कदम तो बढ़ेगा ही। अपने आप को संपूर्ण बनाने के लिए हमें खुद की ही जरूरत है- शिष्य भी हम और गुरु भी।

स्वयंभू देशभक्त

इन दिनों राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रद्रोह की परिभाषा देने वाले तथाकथित देशभक्त कुकुरमुत्ते की तरह उग आए हैं। किसी भी छोटी या बड़ी घटना को देशभक्ति की चाशनी में डूबोकर उसे वाट्सएप के जरिए लोगों तक परोसने की कोशिश करते हैं और बहुत बार अपने मकसद में कामयाब भी हो जाते हैं। भीड़ द्वारा किसी की हत्या हो या विश्वविद्यालय परिसर में घुसकर छात्रों और प्रोफेसरों पर कायराना हमला, ये सभी घटनाएं तथाकथित पोंगापंथी राष्टभक्तों की ही करतूतें हैं।

इसी क्रम में मेघना गुलजार निर्देशित और दीपिका पादुकोण की मुख्य भूमिका में बनी फिल्म 'छपाक' भी कुंठित मानसिकता का शिकार हो रही है। जेएनयू में जाकर एक दिन दीपिका ने हिंसा के शिकार छात्रों से मिलकर संवेदना क्या व्यक्त कर दी, उनके अभिनय और फिल्म पर ही उंगली उठने लगी। 'देशभक्तों' ने उस फिल्म का बहिष्कार करना शुरू कर दिया। गनीमत है कि अभी तक दीपिका को देशद्रोही नहीं कहा गया। आजकल तो जो सरकार के विरोध में एक शब्द भी बोल दे उसे स्वयंभू देशभक्त तुरंत प्रमाणपत्र जारी कर देते हैं। छपाक तेजाब हमले से पीड़ित एक लड़की लक्ष्मी की कहानी पर आधारित फिल्म है जो तेजाब हमले के बाद अपमान और संघर्ष की जिंदगी को जीवटता के साथ जीती है। तेजाब हमले से पीड़ित लड़कियों के लिए यह प्रेरणा देने वाली कहानी है और इसे तो समाज को प्रेरित करने वाली कहानी के रूप में देखने को प्रोत्साहित करने के लिए प्रचारित करना चाहिए। लेकिन अफसोस कि कुछ जगहों पर इस फिल्म को न देखने और न चलाने की नसीहत दी जाने लगी है।

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है और फिल्में उसी साहित्य को रोचक ढंग से पर्दे पर उतार कर समाज के जन-जन तक पहुंचाने का काम करती हैं। समाज के जो तथाकथित ठेकेदार हैं उन्हें समाज और राष्ट्र के प्रति सचमुच चिंता होती तो वे दीपिका पादुकोण की इस फिल्म के लिए प्रशंसा करते न कि समाज की कटु सच्चाई सामने लाने वाली कहानी का बहिष्कार करते। दरअसल, इन्हें समाज या देश से कोई मतलब नहीं बल्कि इसी तरह के दिवालिएपन को दिखाकर मीडिया में चर्चा में बने रहने के सिवाय इनके पास कुछ काम नहीं है। ये उसी मानसिकता को जीने वाले लोग हैं जो किसी निरीह, असहाय पर बल प्रयोग कर अपनी कुंठा को शांत करते हैं। भारतीय समाज को इन्हीं से ज्यादा खतरा है।

● *सुशील कुमार शर्मा, विश्वास पार्क, नई दिल्ली*

जंगल की आग

आस्ट्रेलिया के जंगलों की आग में बहुत कुछ जल कर राख हो गया है। इस भयंकर आग में अब तक पच्चीस लोगों और अड़तालीस करोड़ से अधिक जानवरों की मौत हो चुकी है। आधा जंगल और दो हजार से अधिक घर भी खाक हो गए। इतनी बड़ी संख्या में जानवरों की मौत के बाद अब आस्ट्रेलिया सरकार ने दस हजार ऊंटों को गोली मारने का आदेश दिया है। इसका प्रमुख कारण यह माना जा रहा है कि जिस तरह से ऊंटों की संख्या बढ़ रही है उससे मरुस्थल में जल संरक्षण नहीं हो पा रहा है। लेकिन सोचने वाली बात है कि इतने जानवरों की मौत के बाद अब इतने ऊंटों को मारना क्या सही होगा? इसका सीधा प्रभाव पारिस्थितिकी तंत्र पर पड़ेगा। सरकार को इतने जानवरों को मारने के बजाय कोई और उपाय सोचने की आवश्यकता है।

● *संजू तैनाण, चौबारा, हनुमानगढ़, राजस्थान*

भर्ती या प्रताड़ना

भीषण बेरोजगारी के इस दौर में जहां लाखों युवा रोजगार के लिए दर-दर की ठोकरें खा रहे हैं वहीं दूसरी ओर परीक्षा तंत्र की लापरवाही की सजा निर्दोष अभ्यर्थी साल भर से भुगत रहे हैं। उत्तर प्रदेश में बीते वर्ष छह जनवरी को 69000 प्राथमिक शिक्षकों की भर्ती परीक्षा कराई गई लेकिन परीक्षा के बाद अब तक वे अदालत के चक्कर काट रहे हैं। लाखों अभ्यर्थी और उनके परिजन भर्ती की आस में कुंठा एवं मानसिक प्रताड़ना के शिकार हो रहे हैं। उन्हें सजा उस गलती की मिल रही है जो उन्होंने की ही नहीं।

एक अन्य तथ्य यह भी है कि सरकारों की विफलता से बेरोजगारी में वृद्धि हो रही है और औद्योगिक मांग में भी कमी आ रही है जिससे उद्योगों में छंटनी से पुनः बेरोजगारी में वृद्धि हो रही है। जब सर्वाधिक उपभोग करने वाले युवा वर्ग के पास पैसा ही नहीं है तो औद्योगिक उत्पादन की मांग में वृद्धि की आस बेमानी है। इसी क्रम में यह बात महत्त्वपूर्ण है कि अपने स्तर पर योग्य अभ्यर्थियों को रोजगार देना सरकारों की प्राथमिकता में रहा ही नहीं है जिससे बेरोजगार युवा वर्ग में हताशा और कुंठा का भाव जन्म ले रहा है और विकास दर नीचे की ओर जा रही है।

● *महेंद्र नाथ चौरसिया, शोहरतगढ़, सिद्धार्थनगर*

सपना और हकीकत

मिसाइल मैन के नाम से मशहूर पूर्व राष्ट्रपति डॉ एपीजे अब्दुल कलाम ने बीस साल पहले भारत के लिए एक बड़ा सपना देखा था। वह सपना था भारत के समग्र विकास का। कलाम ने भारत के लिए विजन-2020 तैयार किया था जिसमें कृषि और खाद्य प्रसंस्करण, ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी सुविधाएं, सौर ऊर्जा का विस्तार, शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा और स्वास्थ्य, सूचना व संचार और परमाणु प्रौद्योगिकी के विकास के लिए जरूरी तकनीक और रणनीतिक उद्योगों को बेहतर बनाने की बात कही गई थी। लेकिन क्या हम कह सकते हैं कि हमने उन उपलब्धियों को प्राप्त कर लिया है, जिनका सपना डॉ कलाम ने देखा था? सच्चाई तो यह है कि इनमें से कई विषयों पर आज भी निराशाजनक स्थिति है। आज जब कृषि घाटे का सौदा बन रही है, बेरोजगारी की हालत 45 सालों में सबसे बुरी है, हजारों लोग गांवों से शहरों की ओर रोज पलायन कर रहे हैं, शिक्षा और स्वास्थ्य की दशा दयनीय है, देश आर्थिक तंगी से गुजर रहा है तो हम कैसे भारत को विकसित बना पाएंगे?

डॉ कलाम ने बीस साल पहले जिन विषयों को लेकर निराशा जताई थी, और जिनसे उबरने के लिए विजन-2020 का समयबद्ध कार्यक्रम दिया था तो क्या सन 2020 में हम उन लक्ष्यों तक भी पहुंच पाए हैं? विकसित भारत की कल्पना केवल स्वप्न मात्र नहीं होनी चाहिए, इसे यथार्थ बनाना हम सब भारतीयों का मिशन होना चाहिए।

● *गौतम एसआर, खंडवा, मध्यप्रदेश*

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

नई दिल्ली

www.readwhere.com